

संपादकीय

डिजिटल लूट का नया बाजार और असहाय सिस्टम

राजधानी
भोपाल में बीते 24 घंटे में सात थानों में साइबर फ्राँड के 14 मामले दर्ज हुए हैं। कहीं बिजली बिल तो कहीं यातायात चालान के नाम पर आम आदमी को लूटा जा रहा है। शिकायतें दर्ज हो रही हैं, लेकिन पैसा वापस आने की उम्मीद लगभग खत्म हो चुकी है। यह स्थिति सिर्फ भोपाल की नहीं, पूरे देश की है। सवाल है कि आम आदमी कब सचेत होगा और सिस्टम कब जागेगा।

ठगों ने आम आदमी के मनोविज्ञान को समझ लिया है। भारतीय नागरिक बिजली कटने और पुलिस चालान से डरता है। इसी डर को हथियार बनाया जा रहा है। मैसेज आता है कि बिजली बिल अपडेट नहीं है, आज रात कनेक्शन कट जाएगा, लिंक पर क्लिक करके बिल जमा करें। दूसरा मैसेज आता है कि गाड़ी का चालान पेंडिंग है। लोग घबरा कर लिंक पर क्लिक करते हैं। फिर एपीके फाइल डाउनलोड होती है और देखते ही देखते खाता खाली हो जाता है।

पुलिस प्रशासन इस पूरे खेल में असहाय नजर आ रहा है। पैसा कहा गया, यह पता लगाना मुश्किल होता है। पैसा एक खाते से दूसरे और फिर तीसरे खाते में पहुँचकर क्रिप्टो या एटीएम से निकल जाता है। जब तक पुलिस एक खाते को फ्रीज करती है, पैसा कहीं और जा चुका होता है। हमारे पास कानून है, लेकिन तकनीक नहीं है। हर जिले में साइबर थाने का बोर्ड लगा है, लेकिन अंदर वही पुराने संघान हैं।

सरकार जागरूकता अभियान चला रही है। फिर भी लोग ठगी का शिकार हो रहे हैं। कारण है कि जागरूकता सिर्फ सूचना नहीं, व्यवहार परिवर्तन है। हम अनजान लिंक पर क्लिक न करने की सलाह देते हैं, लेकिन यह नहीं बताते कि असली बिजली कंपनी का मैसेज कैसा होता है और नकली कैसा। यह भी नहीं सिखाते कि सरकारी भुगतान सिर्फ आधिकारिक एप या वेबसाइट से ही करना है।

क्या बिजली कंपनियों की जिम्मेदारी नहीं कि वे ग्राहकों को बताएं कि वे व्यक्तिगत लिंक नहीं भेजते? क्या परिवहन विभाग की जिम्मेदारी नहीं कि चालान का मैसेज सिर्फ सरकारी नंबर से भेजे? क्या टेलीकॉम कंपनियों की जिम्मेदारी नहीं कि वे फर्जी सिम बंद करें? हर विभाग अपनी जिम्मेदारी दूसरे पर डाल रहा है और आम आदमी पिस रहा है। जब तक केंद्र, राज्य और निजी कंपनियां साझा सुरक्षा तंत्र नहीं बनाएंगी, यह लूट चलती रहेगी।

जब तक पुलिस कार्रवाई करती है, पैसा दूसरे खातों में पहुँच जाता है। इसलिए सतर्कता ही बचाव है। भुगतान से पहले संदेश की सत्यता जांचना जरूरी है और आधिकारिक माध्यम का उपयोग करना चाहिए। कोई भी सरकारी विभाग व्हाट्सएप पर एपीके फाइल नहीं भेजता। कोई कंपनी यह नहीं कहती कि तुरंत पैसा नहीं दिया तो बिजली कट जाएगा। तालच और डर दोनों पर काबू पाना होगा। आधिकारिक वेबसाइट पर जांचें और किसी भी अनजान लिंक को फोन में जगह न दें। डिजिटल दुनिया में आपका अंगुठा ही आपकी तिजोरी की चाबी है। गलत जानकारी बिल्क किया तो ताला टूट जाएगा। सतर्क रहें और याद रखें कि साइबर सुरक्षा कोई सरकारी योजना नहीं, बल्कि आपकी अपनी आदत है।

आजकल

जब मशीन तेज और दिमाग धीमा होने लगे, इलाज में एआई का जादू और क्लासरूम में उसका साथ

आज प्राइमरी केयर में एआई एक भरोसेमंद जूनियर की तरह काम कर रहा है। एंटीबायोटिक चुनने, ब्लड रिपोर्ट का मतलब समझने और चक्कर जैसी उलझी शिकायत की जड़ पकड़ने में वह मदद कर रहा है। ओपनएविडेंस जैसे प्लेटफॉर्म गाइडलाइन और रिसर्च पेपर पढ़कर तुरंत जवाब दे रहे हैं। सीनियर डॉक्टरों के लिए यह वरदान है, लेकिन जूनियर डॉक्टरों के लिए यही वरदान धीरे-धीरे अभिशाप बन सकता है, क्योंकि जो काम दिमाग को करना था, वह अब ऐप कर रहा है। नई पीढ़ी के डॉक्टरों में बदलाव दिख रहा है। पहले छात्र दवाओं के नाम, डोज और साइड इफेक्ट याद करते थे। अब सब क्लाउड में है। स्मार्टफोन कहता है कि याद क्यों करना, जब सर्च कर सकते हो। जब बहुत जल्दी बहुत ज्यादा मदद मिल जाती है तो सीखने की क्षमता कमजोर पड़ सकती है। मेडिकल शिक्षा में रटना बुरा शब्द माना जाता है, लेकिन बिना याद किए समझ भी विकसित नहीं होती।

अनुभवी डॉक्टर एआई के जवाब को सवालों की नजर से देखता है। वह अपने अनुभव से पूछता है कि क्या यह जवाब इस मरीज पर लागू होगा। ट्रेनी के पास यह फिट्टर नहीं होता। वह एआई को गुरु मानकर कॉपी-पेस्ट कर सकता है। इससे उसकी क्लीनिकल समझ विकसित होने में बाधा आ सकती है।

पहले छात्र मरीज के पास बैठता था, उसकी आंखें देखता था और उसकी सांस गिनता था। अब वह स्क्रीन पर रिपोर्ट देखता है और एआई से पूछता है कि क्या करें। एआई ब्लड रिपोर्ट पढ़ सकता है, लेकिन मरीज के चेहरे पर छिपा डर नहीं पढ़ सकता। वह दवा बता सकता है, लेकिन भरोसा नहीं दे सकता। एआई को बैन करना समाधान नहीं है। सवाल संतुलन का है। छात्र पहले अपने दिमाग से निदान लिखें और फिर एआई से मिलान करें। परीक्षा में सही उत्तर के साथ फिर एपीके की प्रक्रिया को भी महत्व मिले। भविष्य का डॉक्टर ऐसा होना चाहिए जो एआई के बिना भी काबिल हो और एआई के साथ और ज्यादा काबिल बन जाए। तकनीक को स्टीयरिंग नहीं, पावर स्टीयरिंग बनाना होगा। गाड़ी डॉक्टर की ही चलानी है।

देश के हर कोने से छेड़छाड़, यौन उत्पीड़न और बलात्कार की घटनाएं सामने आ रही हैं और ऐसी कई घटनाओं ने एक बार फिर पूरे देश में महिला सुरक्षा के विषय को सुर्खियों में ला दिया है। जाहिर है, इस पर समाज में रोष है और लोग इससे जल्द निजात चाहते हैं। सवाल है, ऐसी घटनाएं बढ़ क्यों रही हैं? इसके पीछे कई वजहें हैं। पश्चिमी प्रभाव और समाज के पश्चिमीकरण के कारण हमारे संस्कारों और मूल्यों में गिरावट आई है। ऐसा नहीं है कि पहले ऐसी वारदातें नहीं होती थीं, लेकिन हमारे समाज को मजबूत नैतिक नींव ने काफी हद तक इन पर लगाम लगा रखी थी। गांवों में हर लड़के और लड़की को यही सिखाया और समझाया जाता था कि सभी आपस में भाई-बहन हैं। अगर कभी कोई ऐसी गलत बात सामने आती थी तो पंचायतें तुरंत सक्रिय हो जाती थीं और दोषी व्यक्ति का गांव से बहिष्कार कर दिया जाता था। आज भी माता-पिता को अपने बच्चों को सही संस्कार देने चाहिए।

आज के समय में नैतिक मूल्यों में हर तरह से गिरावट आई है। सोशल मीडिया के फायदे के साथ-साथ कुछ नुकसान भी हैं। आज किशोरों और युवाओं के हाथ में स्मार्टफोन और इंटरनेट है। ऐसे कई आपत्तिजनक सामग्री उन तक पहुंच रही हैं, जो उनके दिमाग पर बुरा असर डालती हैं। परिवार का बिखराव भी एक

तीन दशक बाद आया नक्शा और बिना नक्शे के बसा शहर

भोपाल का आखिरी मास्टर प्लान 1995 में

आया था, जो 2005 तक के लिए था। उसके बाद से राजधानी बिना किसी वैधानिक नक्शे के ही बढ़ती रही है। इसी बीच शहर ने अपने आप को फैलाया, अवैध कॉलोनियां बनीं, प्लॉट कटे, मकान बने और फिर उन्हीं अवैध निर्माणों को नियमित करने का वादा लेकर हर चुनाव में नेता आते रहे हैं। यह एक अजीब विडंबना है कि जिस सिस्टम का काम शहर को प्लान करना था, वही सिस्टम अनप्लान्ड शहर को नियमित करने का ठेकेदार बन गया। अब तीन दशक बाद गवर्नेंस के मास्टरर्स एक नया ड्राफ्ट लेकर आए हैं, जो देखने में बहुत आकर्षक है, लेकिन सवाल वही है, क्या कागज का यह आकर्षण जमीन की कुरूपता को ढक पाएगा?

पुराने वादों की कब्र पर नए शब्दों की इमारत : नए ड्राफ्ट में बड़े-बड़े शब्द गढ़े गए हैं, मेट्रोपॉलिटन रीजन, ग्रोथ कॉरिडोर, एजुकेशन नॉलेज हब, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस सिटी, यूनिफाइड ट्रांसपोर्ट अथॉरिटी। सुनने में लगता है जैसे भोपाल अब सीधे सिंगापुर बन जाएगा। लेकिन हकीकत यह है कि ये सब पुराने विचार ही हैं, जिन्हें नए लेबल में पैक किया गया है। ग्रोथ कॉरिडोर कोई नया नहीं, बल्कि वही पुराना बाईपास है, जिस पर वर्षों से निर्माण हो रहे हैं। अब इस पर नियम बनाया गया है कि एक एकड़ से कम जमीन पर विकास की अनुमति नहीं मिलेगी। सोचिए, छोटे किसान या छोटे प्लॉट धारक का क्या होगा? उसके पास आधा एकड़ जमीन है तो वह न तो घर बना सकता है, न बेचने पर सही दाम पा सकता है। या तो वह और जमीन खरीदे या अपनी जमीन किसी बड़े बिल्डर को औने-पौने दाम पर बेच दे। यह नियम बड़े लोगों के लिए कॉरिडोर खोलेगा और छोटे लोगों के लिए दरवाजे बंद करेगा।

मिक्स लैंड यूज यानी जो है, उसी को नाम दे दो : सुप्रीम कोर्ट रहवासी इलाकों में कमार्शियल गतिविधियों को लेकर बहुत सख्त है। सीलिंग की कार्रवाई से बचने के लिए नए प्लान में मिक्स लैंड यूज का फर्मुला लाया गया है। सड़क की चौड़ाई के हिसाब से दुकान और ऑफिस को वैध करने की तैयारी है। मतलब, जो अतिक्रमण मौके पर पहले से

दवा के नाम पर भरोसे की हत्या पर्ची पर लिखी उम्मीद और लैब में अटकी हकीकत

छिंदवाड़ा में कफ सिरप पीने से बच्चों की मौत ने पूरे प्रदेश को हिला दिया था, लेकिन उस हादसे के बाद भी व्यवस्था की नींद नहीं टूटी है। आज भी मध्य प्रदेश की प्रयोगशालाओं में छह हजार से ज्यादा दवाओं के नमूने जांच का इंतजार कर रहे हैं। कागज पर नियम कहता है कि सैंपल लेने से लेकर रिपोर्ट आने तक का समय 50 दिन है, लेकिन जमीन पर यही काम महीनों तक लटका रहता है। सोचिए, जिस दवा को मरीज अपनी जान बचाने के लिए खा रहा है, उसी की गुणवत्ता पर ही सवाल हो तो स्वास्थ्य व्यवस्था का क्या मतलब रह जाता है? यह सिर्फ एक तकनीकी देरी नहीं, बल्कि सीधे तौर पर लोगों की जिंदगी से खिलवाड़ है।

पचास दिन का वादा और छह महीने का इंतजार क्यों : सरकारी व्यवस्था में दवा की जांच दो स्तरों पर होती है। एक तो सरकारी खरीद की दवाएं और दूसरी बाजार में बिक रही दवाएं। औषधि निरीक्षक दुकानों से नमूने लेते हैं और उन्हें लैब भेजते हैं, लेकिन लैब में स्टाफ कम है, मशीनें पुरानी हैं और सैंपल ज्यादा हैं। नतीजा यह होता है कि जांच रिपोर्ट आने तक वह दवा आधी बाजार में बिक चुकी होती है। अगर रिपोर्ट पर दवा फेल भी हो जाए तो तब तक सैकड़ों लोग उसे खा चुके होते हैं। यह कैसी व्यवस्था है, जहां सजा बाद में मिलती है और जहर पहले बिक जाता है? जब तक रिपोर्ट आएगी, तब तक नया बैच बाजार में आ जाता है और पुराना बैच लोगों के खून में घुल चुका होता है।

तीन लैब, पचहत्तर अफसर और पचास हजार दुकानें : पूरे मध्य प्रदेश जैसे बड़े राज्य में दवा जांच के लिए सिर्फ तीन लैब हैं, भोपाल, इंदौर और जबलपुर, और इसमें भी पूरी तरह सक्रिय सिर्फ भोपाल की लैब है। पूरे प्रदेश में करीब 75 ड्रग इम्पेक्टर कार्यात हैं और मेडिकल स्टोर की संख्या 50 हजार से ज्यादा है। एक इम्पेक्टर के जिम्मे सैकड़ों दुकानें हैं। यह कैसे हर दुकान पर नजर रखेगा, कैसे हर संदिग्ध दवा का नमूना लेगा? यह गणित ही गलत है। अकेले भोपाल में साढ़े तीन हजार से ज्यादा मेडिकल स्टोर हैं और जांच की गति इतनी धीमी है कि साल भर में छह हजार से 6,500 नमूनों की ही जांच हो पाती है, जबकि प्रदेश में

नईदुनिया

बिना मास्टर प्लान के कैसे बन गई राजधानी



है, उसे ही अब वैधता का जामा पहना दिया जाएगा। नीति हमेशा आकर्षक होती है, लेकिन जमीनी हकीकत कुरूप हो जाती है। यही इस प्लान में भी दिख रहा है। टीटी नगर को तोड़कर नया बनाने की योजना पिछले प्लान में भी थी। टीटी नगर तो तोड़ दिया गया, लेकिन वहां निर्माण आज तक पूरा नहीं हुआ। कितनी सड़कें, जो पिछले प्लान में घोषित थीं, आज तक कागज से बाहर नहीं निकलीं। तो फिर नए प्लान की सड़कों पर भरोसा कैसे किया जाए?

स्मार्ट सिटी के खंभों में दौड़ता करंट और सिस्टम की चुप्पी : स्मार्ट सिटी के नाम पर करोड़ों रुपए खर्च हुए, लेकिन शहर स्मार्ट होने के बदले खतरनाक हो गया। हाल ही में एक व्यक्ति की मौत इलेक्ट्रिक पोल में करंट आने से हो गई। जांच में पता चला कि 38 किलोमीटर के दायरे में 661 पोल में से 400 खतरनाक हालत में हैं। यह सिर्फ लापरवाही नहीं, आपराधिक लापरवाही है। लेकिन स्मार्ट सिटी कंपनी हो या नगर निगम, कोई भी जिम्मेदारी लेने को तैयार नहीं है। जब मौजूदा ढांचे की ही सुरक्षित नहीं



रखा जा सकता तो नए एजुकेशन हब और एआई सिटी की कल्पना कितनी खोखली लगती है। पहले जो है, उसे तो ठीक कर लीजिए, फिर नई उड़ान की बात कीजिए।

तालाब, झुग्गी और भोपाल की आत्मा पर चोट: भोपाल की पहचान उसके तालाब हैं, लेकिन तमाम योजनाओं के बाद भी उनमें गंदा पानी मिलना बंद नहीं हुआ। कैचमेंट एरिया में निर्माण कागज पर रुके हैं, लेकिन जमीन पर लगातार हो रहे हैं। दूसरी तरफ हर मुख्यमंत्री ने भोपाल को झुग्गी मुक्त बनाने का एलान किया। बाणगांगा जैसी सबसे पुरानी झुग्गी बस्ती के लिए कई प्लान बने, लेकिन एक भी जमीन पर नहीं उतरा। आज भी झुगियों की संख्या कम नहीं हुई। जो पक्के मकान बनाए भी गए, वे आवंटन के बाद भी झुग्गी को एक व्यवसाय के रूप में जिंदा रख रहे हैं। इसका मतलब है कि हमने झुग्गी को हटाने की नहीं, बल्कि उसे रोस्ट करने की योजना बनाई है।

अदालत की निगरानी और अथॉरिटी का जाल : राज्य सरकार सुप्रीम कोर्ट में अंडरटेकिंग दे चुकी है

दलित वोटों की नई सियासी जंग, आरक्षित सीटों का गणित और सत्ता की चाबी उतर

प्रदेश विधानसभा चुनाव 2027 की राजनीतिक बिसात अभी पूरी तरह बिछी भी नहीं है, लेकिन दलित वोटों को लेकर सियासी हलचल तेज हो गई है। 403 सदस्यीय विधानसभा में 84 सीटें अनुसूचित जाति और 2 सीटें अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित हैं। यानी कुल 86 आरक्षित सीटें विधानसभा का करीब 21 प्रतिशत हिस्सा हैं। सरकार बनाने के लिए 202 सीटों की जरूरत होती है, इसलिए इन सीटों पर प्रदर्शन चुनावी गणित में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। दरअसल, पिछले विधानसभा चुनावों में भी आरक्षित सीटों ने सत्ता के समीकरण बदले हैं।

इतिहास गवाह है कि जब दलित वोट बदलता है तो सत्ता के समीकरण भी बदलते हैं। उत्तर प्रदेश के पिछले विधानसभा चुनावों का इतिहास बताता है कि आरक्षित सीटों का प्रदर्शन व्यापक राजनीतिक तस्वीर से अलग नहीं रहा है। 2017 में भाजपा ने 86 आरक्षित सीटों में 70 पर जीत दर्ज की थी। उसके सहयोगियों ने भी कुछ सीटें जीतीं, जिससे भाजपा नेतृत्व वाले गठबंधन का आंकड़ा और बढ़ गया। 2022 में भाजपा नेतृत्व वाले गठबंधन ने 65 आरक्षित सीटें जीतीं, जबकि समाजवादी पार्टी के नेतृत्व वाले गठबंधन के खते में 20 सीटें आईं। लेकिन 2024 के लोकसभा चुनाव ने तस्वीर में एक नया संकेत दिया। उत्तर प्रदेश की 17 अनुसूचित जाति आरक्षित सीटों में भाजपा को केवल आठ सीटें मिलीं। ऐसे में 2027 में भाजपा के सामने आरक्षित सीटों पर अपना पिछला प्रदर्शन बनाए रखने और दलित समाज के विभिन्न वर्गों के बीच संगठनात्मक पहुंच मजबूत करने की चुनौती रहेगी। इस राजनीतिक प्रतिस्पर्धा में बहुजन समाज पार्टी की भूमिका भी नजरअंदाज नहीं की जा सकती। 2024 में बसपा लोकसभा में उत्तर प्रदेश से कोई सीट नहीं जीत सकी, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि दलित समाज में उसका प्रभाव पूरी तरह समाप्त हो गया है। दलित वोट एकसमान राजनीतिक समूह नहीं है और अलग-अलग उपसमुदायों के राजनीतिक रुझान अलग हो सकते हैं।

समाजवादी पार्टी ने 2027 के लिए दलित प्रतिनिधित्व बढ़ाने की दिशा में अपनी रणनीति को आगे बढ़ाया है। हालिया रिपोर्टों के अनुसार, पार्टी करीब 100 एससी-एसटी उम्मीदवार उतारने की योजना पर काम कर रही है, जिसमें आरक्षित सीटों के अलावा 14 सामान्य सीटों पर भी दलित उम्मीदवार उतारने का विचार शामिल है। यह कदम पार्टी के पीडीए यानी प्रिंसिपल, दलित और अल्पसंख्यक सामाजिक गठजोड़ को विस्तार देने की कोशिश के रूप में देखा जा रहा है। सपा के लिए चुनौती केवल टिकट देने तक सीमित नहीं है। उसे दलित समाज के विभिन्न समूहों के बीच राजनीतिक भरोसा बनाने और अपने संगठन में उनकी भागीदारी बढ़ाने की जरूरत होगी।

यहां सवाल सिर्फ 86 सीटों का नहीं है। 2027 की लड़ाई को केवल आरक्षित सीटों के आंकड़े से समझना अधूरा होगा। असली प्रश्न यह होगा कि दलित मतदाता का किताब हिस्सा किस दल के साथ जाता है और क्या समर्थन कितनी सामान्य तथा आरक्षित सीटों पर जीत में बदलता है। इसके अलावा स्थानीय उम्मीदवार, गठबंधन, क्षेत्रीय मुद्दे और सरकार के कामकाज का मूल्यांकन भी मतदान के फैसले को प्रभावित करते हैं। उत्तर प्रदेश की राजनीति में दलित मतदाता अब केवल किसी एक दल का बंधुआ नहीं रहा। वह यह भी देखता है कि शिक्षा, नौकरी, सुरक्षा, सम्मान और राजनीतिक भागीदारी में उसका हिस्सा कहाँ है। जो दल इन सवालों का ठोस जवाब देगा, वह इस बड़े वोट बैंक के करीब पहुंचेगा। उत्तर प्रदेश में दलित वोटों की नई सियासी जंग सिर्फ आंकड़ों की जंग नहीं है, यह भरोसे की जंग है। भाजपा ने पिछले दो चुनावों में आरक्षित सीटों पर बड़ी जीत हासिल की, लेकिन लोकसभा 2024 के नतीजों ने संकेत दिया कि जमीन पर नाराजगी भी है। समाजवादी पार्टी पीडीए के जरिए नई जमीन तैयार करने की कोशिश में है, तो बसपा अपने पुराने जनाधार को फिर से खड़ा करने की जद्दोजहद में है। ऐसे में 2027 का चुनाव यह तय करेगा कि दलित समाज किसے अपना स्वाभाविक मित्र मानता है और किसे केवल चुनावी मौसम का साथी। आने वाले महीनों में हर दल को यह साबित करना होगा कि वह सिर्फ वोट नहीं, बल्कि हिस्सेदारी और सम्मान देने को तैयार है। (**नईदुनिया संपादकीय डेस्क**)

हमारे घर में है। पहला विद्यालय घर है। पिता को अपने बेटे को सिखाना होगा कि महिला सम्मान क्या है। माता को अपने बेटे को बताना होगा कि ताकत का मतलब दबाना नहीं, बल्कि बचाना है। स्कूल में यौन शिक्षा और नैतिक शिक्षा को मजबूत करना होगा। पुलिस को संवेदनशील बनाना होगा। हर थाने में महिला सहायता केंद्र सिर्फ कागजों पर नहीं, बल्कि जमीन पर काम करे।

अपराध तब रहेगा जब समाज अपनी सोच बदलेगा। जब लड़की के कपड़ों पर सवाल उठाने की जगह लड़के की सोच पर सवाल उठेगा, जब हम अपनी बेटियों को सिर्फ बचकर चलना नहीं, बल्कि लड़कों को संभलकर चलना सिखाएंगे, जब त्वरित न्याय मिलेगा, जब फास्ट ट्रैक अदालतें सच में तेज गति से काम करेंगी, जब मीडिया सिर्फ आंकड़े नहीं, बल्कि जागरूकता फैलाएगा और जब सरकार हकीकत स्वीकार कर कठोर कार्रवाई करेगी। महिला सुरक्षा सिर्फ सरकार की जिम्मेदारी नहीं है, यह हम सबकी जिम्मेदारी है। पड़ोस की बेटी भी हमारी बेटी है। अगर हम आज चुप रहे तो कल हमारी बेटी भी असुरक्षित होगी। इसलिए बोलना होगा, लड़ना होगा और अपनी सोच बदलनी होगी। तभी यह सिलसिला थमेगा और देश सही मायने में बेटियों के लिए सुरक्षित बन पाएगा। (**नईदुनिया संपादकीय डेस्क**)



स्थिति को बदला नहीं जा सकता और यह मुश्किल है कि वे फिर से इस प्रवृत्ति का प्रदर्शन करें।

यह स्थिति इसलिए भी बनी हुई है कि हमारे सार्वजनिक जीवन में नैतिकता का स्तर गिरा

है। कई जनप्रतिनिधि हैं, जिनके विरुद्ध ऐसे मामले लंबे समय से चल रहे हैं, लेकिन वे फिर भी सक्रिय हैं। इस माहौल में उनसे क्या उम्मीद की जा सकती है? कई बार सियासी फायदे के लिए मामलों को दबा दिया जाता है